'गृहलक्ष्मी'-ग्रंथमाला, संख्या २४

तरुण तपस्विनी



जाने कब सन्ध्या की लाली सी मिट गई माँग रेखा।
बँधते-खुलते कभी न मैंने वैवाहिक कंगन देखा॥
चारु चूड़ियाँ दूर की गईं जाने कब कर से मेरे।
अब सुनती हूँ—"रहे नहीं इस भूतल पर प्रियतम तेरे॥"

लेखक—
श्रीनाथ सिं

'गृहलक्ष्मी'-ग्रन्थमाला, संख्या २४

तरुण तपस्विनी

अर्थात्

एक बाल विधवा का करुण-क्रन्दन



लेखक

श्रीनाथ सिंह

प्रकाशक

पण्डित सुदर्शनाचार्य, बी० ए०

'गृहलक्ष्मी'-कार्य्यालय,

प्रयाग।

प्रथम संस्करण | सं० १९९१ वि० | मूल्य चार आना

पण्डित सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए० के
प्रबन्ध से सुदर्शन प्रेस, प्रयाग में
मुद्रित, सन् १९२४ ई०

मिलने का पता—

मैनेजर, 'गृहलक्ष्मी'-कार्य्यालय,

इलाहाबाद।



स्वाभाविक मादकता भी
वर्जित है जिसके यौवन में।
उठ कर ही भावों की आँधी
रह जाती जिसके मन में॥
अमिट निराशा उमड़ रही है
जिसकी भीगी चितवन में।
जीवन ही है भार हो रहा
जिसको अपने जीवन में॥
अखिल विश्व की तपोभूमि का
क्रीड़ास्थल है जिसका तन।
उस अबोध विधवा के कर में
अर्पित है यह करुण-रुदन॥

वक्तव्य





आजकल हमारे देश में विधवाओं की बड़ी दुर्दशा है। देश माता का दामन उनके आँसुओं से तर है। पग पग पर उनका अपमान होता है। बहुत कम लोगों को उनके साथ सहानुभूति है। पशुओं के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं होता। वे स्वावलम्बी नहीं हैं। सास ससुर उनका बहुत कम खयाल करते हैं। अधिकतर उनको पिता के घर में ही आश्रय मिलता है। वह भी माता की ममता के कारण। माता के पश्चात् यदि भाई हुए और अनुकूल भावज मिली तो कुशल है नहीं तो एक जगह बैठ कर रोने भी नहीं पातीं। वे अशुभमूर्त्ति समझी जाती हैं। विवाह इत्यादि के अवसरों पर उनके घर के ही लोग उनकी नज़र बचाने लगते हैं। एक तो पति का वियोग दूसरे यह सामाजिक अत्याचार!! धन्य है उनके साहस को जो इस असह्य दुःख सागर को पार करने का उद्योग करती हैं।

इस समय देश में पौने तीन करोड़ विधवाएँ हैं। इनमें बहुत सी तो ऐसी हैं जिन्होंने पति का मुँह तक नहीं देखा और यदि देखा भी है तो उनको स्मरण नहीं है। जिन बच्चों

के दूध के दाँत भी नहीं उखड़े वह पति को क्या जाने? उसको किस प्रकार स्मरण करे और आजन्म किस तरह उसके नाम पर आँसू गिराती रहे। यहीं तक अन्त नहीं है। देश के कामी, कुविचारी, ज्ञान शून्य, राक्षस वृत्ति के पतित पुरुष इन पर सदैव दृष्टि लगाये रहते हैं। और इनका जीवन नष्ट करने में ज़रा भी नहीं हिचकते। चारों तरफ भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं, वेश्याओं की दिनों दिन वृद्धि हो रही है, नाना प्रकार के रोग फैल रहे हैं।

जिन लोगों को विधवाओं की इस दशा पर ज़रा भी दुःख हुआ है उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया है। इसके सिवाय दयार्द्र हृदयों को और कोई रास्ता ही नहीं सूझता। जो रास्ता है भी वह गहन और अगम्य प्रतीत होता है। बाल विवाह और वृद्ध विवाह, यही दो विधवाओं की ऐसी दुर्दशा के कारण हैं। युवावस्था में विवाह होने पर यदि स्त्री विधवा भी हो जाय तो पति की स्मृति उसको डूबते को तिनके का सहारा की भाँति ही सही बहुत कुछ मदद दे सकती है। अत्यन्त शोचनीय दशा उनकी है जिनको तिनके का भी सहारा नहीं है।

इस किताब में मैंने विधवा विवाह का उपदेश नहीं दिया। यद्यपि समाज की वर्तमान स्थिति हमारा ध्यान सब से पहिले इसी ओर आकर्षित करती है। बिना विधवा-विवाह का प्रचार किये भी विधवाओं का कष्ट कम किया जा सकता है

वह है सब से पहिले उनके साथ प्रेम से व्यवहार करना, उनका आदर करना, उनको अशुभ मूर्त्ति न समझना, उनको कटु वाक्य न कहना इत्यादि। इसके बाद उनकी शिक्षा की व्यवस्था करना और फिर बाल-विवाह और वृद्ध विवाह को रोकने का उद्योग करना।

इस छोटी सी कविता-पुस्तक में यह सब बातें नहीं आ सकती थीं। अतएव इसमें केवल आज कल की दुखिया अबोध विधवा के आन्तरिक हृदय का चित्रण करने का उद्योग किया है। और समाज के कटु व्यवहारों का सिंहावलोकन कराया है। अन्त में विधवा बहिनों को सेवा मार्ग पर चलने की राय देते हुए लेखनी को विश्राम दिया है।

हमें पूर्ण आशा है कि यदि विधवाओं का लोग—जैसा कि इस पुस्तिका में कहा गया है—सम्मान और सत्कार करने लगें तो उनके सब नहीं तो आधे दुःख तो अवश्य कम हो जायँ।

विधवायें पवित्रता की मूर्त्ति हैं। उनके स्वरूप में ईश्वर घूमते हैं। उनकी इज़्ज़त का ध्यान रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। यही इस रचना का उद्देश है।

प्रयाग
१५—६—२५

—लेखक

—:०:—

तरुण तपस्विनी

दिव्यदर्शन

(१)

जिसके नील सलिल में सञ्चित शोभा है हरि के तन की।
जिसके कलित कूल पर क्रीड़ित काया है वृन्दाबन की॥
जिसकी धारा की कल-कल में 'राधा-राधा' की रट है।
जिसके तट पर आंख मूँद कर सुन पड़ा बंशी वट है॥

(२)

जिसके रुचिर रेणुओं में रक्षित सम्मान हमारे हैं।
और खुले इतिहास पृष्ठ से जिसके खड़े कगारे हैं॥
प्रतिविम्बित है नभ का नकशा जिसके दर्पण से तन में।
है अतीत का दृश्य छिपा जिसकी लहरों के कम्पन में॥

(३)

उस कल्याण-कारिणी-कालिन्दी का तट से मिलता जल।
एक सुघड़ बाला से शोभित है शशि से ज्यों उदयाचल॥
लहरों की हिलोर से है वह कमल कलीसी हिल जाती।
दर्पण पर अङ्कित मणि सी पर अटल भाव है दिखलाती॥

(४)

निर्जनता बह-बह आती है नीरव खड़ी दिशाओं से।
प्रतिबिम्बित हैं जल में तारे कम्पित दीप शिखाओं से॥
शशि-शोभा केन्द्रित है नभ में अर्द्धनिशा की बेला है।
जड़ चेतन सब की पलकों पर निद्रा का रस रेला है॥

(५)

चारु चन्द्रिका टपकाती है भूपर शान्ति सुधा का सार।
खोल दिये हैं स्वप्न देखने स्वर्गलोक के बन्द किवार॥
आया है समीर के अधरों पर श्रम हरने वाला हास।
फेंक रही हैं कुसुमित कलियाँ चारों ओर मनोहर बास॥

(६)

इस कुसमय में कालिन्दी-तट पर ले यह कञ्चन सा तन।
किस अभिलाषा के साहस में कसकर अपना कोमल मन॥
कौन यहाँ युवती आई है उर में शान्ति भाव भरने।
कर रक्खा जिसको एकाकी इस प्रकार विश्वम्भर ने॥

(७)

दानव, देव, नाग, नर, किन्नर, किसके गृह में पली हुई।
दैविक, दैहिक अथवा भौतिक किस ज्वाला से जली हुई॥
अगणित अश्रु मोतियों की यह गूँथ गूँथ मञ्जुल माला।
किस पत्थर का पूजन करने आई है यह नव बाला॥

(८)

मेघावृत रजनी से काले केशों की विद्युत रेखा।
नग्न मांग ने दूर सदा को सेंदुर क्या होते देखा॥
जिससे वह बिथुरी अलकों में अन्तर्धान हुई सी है।
आभा उसकी अश्रुकणों में हो सङ्कुचित उई सी है॥

(९)

तम-तरङ्ग से कुञ्चित केशों में क्रीड़ा करने वाले।
श्रवण बनाते जो मनसिज के खिँचे और चुचके प्याले॥
कुण्डल हीन आज वे लगते मणि-लोलुप अहिनी-फन से।
और इसी से दोनों गोल कपोल हुए हैं निर्जन से॥

(१०)

पीताम्बर के घूँघट भी जिस पर जँचते थे मटमैले।
केले की छीमी के छिलके के पीले तन से फैले॥
उस बिन्दी-विहीन मस्तक में केशर-कीच कहाँ पायें।
केवल चिर चिन्ता की अब हैं खिँची हुई कुछ रेखायें॥

(११)

दोनों वक्र भृकुटियों ने मिल नवल नासिका के ऊपर।
ताँत हीन वह धनुष रचा है जिससे छूट न पावे शर॥
जिस पर इसको ताना था वह लक्ष्य हो गया ओझल है।
इसी लिये छीना प्रत्यञ्चा का शायद सारा बल है॥

(१२)

छबि-सागर में उठी ऊर्मि सी जो नासिका सुशोभित थी।
तिल-प्रसून की कोमल काया जिसकी छवि पर लोभित थी॥
विष्णु-चक्र की समता करता था जिसके नथ का कम्पन।
शेष रहा है उस भूषण-हीना में केवल पीलापन॥

(१३)

दूध-फेन में टपके स्याही की बूँदों से दृग तारे।
जो थे अम्बुज से रस ले उड़ते अलि की सुखमा धारे॥
हैं अध-खिँचे पलक-पर्दों से करते किसका आवाहन।
किस नैराश्य-समीर में गई उड़ उनकी चञ्चल चितवन॥

(१४)

सूर्य्य-मुखी में भूले अलि के तन से बहती रसधारा।
का परिचय पलकें देतीं निज रोती रोमावलि द्वारा॥
अश्रु-कणों में कलित कपोलों ने निज गात छिपाया है।
नभ-गंगा के तल में मानों कञ्चन गया बिछाया है॥

(१५)

सरसों के गुलदस्ते पर विकसित गुलाब के आने से।
या कञ्चन के कन्दुक पर दो मूँगे साथ जड़ाने से॥
छाती जो छवि हास्य-हीन वह इन अधरों पर है छाई।
जिनमें हँसी-हिलोर उषा के क्षणिक नृत्य सी थी आई॥

(१६)

चन्द्र-ज्योति से सनी तरङ्गें छू ग्रीवा को बारम्बार।
कहती हैं—हँसते थे इसमें इसी भाँति हीरों के हार॥
मिला अँगुलियों को आपस में हैं सामने मिले करतल।
खिलकर बन्द हुआ हो मानों जल से निकला अमल कमल॥

(१७)

सुन्दर साड़ी को लहरों ने है सिर पर से लिया उतार।
मानों प्रियतम के हाथों सा प्राप्त इन्हें भी हो अधिकार॥
अर्द्ध-खिंचे से अञ्चल ने पर हिलहिल भङ्ग कर दिया ध्यान।
निकल रही है अब वह जल से मानों स्वयं तरुण छविमान॥

(१८)

वस्त्र असंयत संयत करते तट की ओर खिंची जाती।
बोझी नौका सी उथले जल में आने से अकुलाती॥
वह निराश युवती कहती है—ज्ञात नहीं था माँ यमुने!
तू भी है पत्थर-उर वाली जल की होकर माँ यमुने!

(१९)

आई थी चरणों में तेरे आज सदा के सोने को।
नहीं ठौर भी देती है तू थोड़ा छिपकर रोने को॥
कटि से ऊपर नहीं कहीं भी मैं गहरा पानी पाती।
मन्द पड़ी है तेरी धारा नहीं उसी में बह जाती॥

(२०)

किस संकुचित-हृदय ने तुझको यों संकुचित बना डाला ?
किस कट्टर समाज ने तुझ पर भी अपना जादू डाला ?
किस अन्याय-स्वरूप धर्म ने हृदय हीन कर दिया तुझे ?
किस पापी के पाप पुञ्ज ने इस प्रकार भर दिया तुझे ?

(२१)

क्या कोई आ तेरे जल में करता स्नान कसाई है ?
ऐसी निष्ठुरता हे माता ! तुझ में कैसे आई है ?
क्या न रहे अब तुझ में मिश्रित आंसू ब्रज बालाओं के ?
किस की जो जञ्जीर बजावें हाथ दुखी अबलाओं के ?

(२२)

तरु से टूटा पल्लव सा कुविचारों की आँधी द्वारा।
भटक रहा है निरुद्देश हो मेरा मन मारा मारा ॥
अगर न मिल तेरी निर्मल धारा से पाया छुट कारा।
तो निश्चय ये आँसू कर देंगे तेरा भी जल खारा ॥

(२३)

जाने कब सन्ध्या की लाली सी मिट गई माँग रेखा।
बँधते-खुलते कभी न मैंने वैवाहिक कङ्कन देखा ॥
चारु चूड़ियाँ दूर की गईं जाने कब कर से मेरे।
अब सुनती हूँ—"नहीं रहे इस भूतल पर प्रियतम तेरे ॥"

(२४)

माता यमुने ! तुम्हीं बताओ किस को प्रियतम कहते हैं ?
वही न जो प्राणों से प्रिय हैं हरदम मन में रहते हैं ॥
जब से मैंने होश सँभाला ऐसा कोई मिला कहाँ ?
इस जीवन का कुसुम किसी को देख अभी तक खिला कहाँ ?

(२५)

केवल कुछ-कुछ याद बनी है माँ की और मिठाई की।
गुड़ियों की, सुन्दर सखियों की, और तोतले भाई की ॥
इनके सिवा किसी की किञ्चित मुझ को याद नहीं आती।
फिर पति-हीना कह कर मेरी क्यों यह दुर्गति की जाती ?

(२६)

माना मैंने, बालपने की बेहोशी में यह बन्धन।
बाँध चुका है साथ किसी के तन से मेरा पार्थिव तन ॥
पर दोनों के मन आपस में बँधे कहाँ इस बन्धन से।
बँध जाते तो करती क्यों मैं दुखी तुम्हें इस क्रन्दन से ॥

(२७)

होता मन में बास उसी का जिस पर निर्भर था सिन्दूर।
उसकी विरह-व्यथा रखती मुझको जग के झगड़ों से दूर ॥
भूचालों का सञ्चालक भी हिला न इस मन को पाता।
आँसू के द्वारा अविचारों का समूह बहता जाता ॥

(२८)

किन्तु न उसका दर्शन भी है किया कभी इन नैनों ने।
श्रवणों का न द्वार तक खोला उसके मीठे बैनों ने ॥
पैरों की आहट भी उसके है न कभी मुझ तक आई।
प्राप्त न कुछ आधार ध्यान का हा ! हा ! कैसी कठिनाई ?

(२९)

माता वे प्रियतम कैसे थे जिन्हें न मैंने पहिचाना।
क्या न उन्हें था स्मृति स्वरूप कुछ इस दुखिया को दे जाना ॥
विदा न क्यों माँगी मुझ से जब वे सदैव को थे जाते।
किसके प्यारे हैं अपने प्यारों को ऐसा तरसाते ॥

(३०)

उसी स्वर्ग में रहने वाले कमल-कली के प्रेम-प्रकाश।
प्रतिबिम्बित होकर पानी में नित आते हैं उसके पास ॥
किरणों के द्वारा भी नित करते रहते हैं आलिङ्गन।
केवल दूर रात्रि में होते जिससे वह कर सके शयन ॥

(३१)

हैं शर्मीले शशि भी निशि में जब सब प्राणी सो जाते।
प्रेमालाप कुमुद से करते उसमें सौरभ सरसाते ॥
चातक को दो बूँद चाहिये पर है मेघ बरस जाता।
कहाँ छिपा है मेरा प्रियतम कभी न जो सम्मुख आता ?

(३२)

किस अभिलाषा के बल पर मैं पार करूँ यह पारावार।
स्वर्ग-मिलन का लोभ भी नहीं धरता तरणी की पतवार ॥
मिलने पर भी नभ में उनको मैं कैसे पहिचानूँगी।
यहीं न जिसको जाना उसको वहाँ किस तरह जानूँगी ?

(३३)

है कंटकाकीर्ण जीवन-पथ चारों तरफ अँधेरा है।
इस भूतल पर कोई सच्चा साथी रहा न मेरा है ॥
कैसा यह दुर्देश जहाँ मानव भी पशु बनते जाते।
मेरी चिर-विच्छेद-व्यथा का तनिक न अनुभव कर पाते ॥

(३४)

क्या उन प्रियतम को माँ यमुने ! है केवल अपना ही ध्यान ?
या मेरे इस दुखमय जीवन का भी कुछ रखते हैं ज्ञान ॥
क्या वे कभी भेंट होने पर सकते हैं मुझ को पहिचान ?
मिली हुई इन तारों में है क्या उनकी भी मृदु मुस्कान ?

(३५)

क्या उनको यह विदित नहीं है माँ ! मैं उनके ही कारण ?
हूँ अभागिनी समझी जाती करती मलिन वस्त्र धारण ॥
एक अनावश्यक प्रसून सी हूँ मैं इस जग-उपवन में।
जो आ सकता नहीं कभी भी किसी देव के पूजन में ॥

(३६)

नहीं विरह की पीड़ा जितनी उतना है अपमान बड़ा।
कोमल मन यह सह न सकेगा अब माँ ऐसा क्लेश कड़ा ॥
अगर न आश्रय मिला यहाँ भी तो इसका है अन्त यही।
उसी भूमि का अपयश होगा जिसको तू भी सींच रही ॥

(३७)

बाला यह कहती जाती थी, थी यमुना बहती जाती।
तट पर टूटी लहरों द्वारा निज निर्बलता दर्शाती ॥
इसी समय उस निर्जनता में झिलमिल तारों से चू कर।
गूँज उठी यह मधुर-मनोहर-ध्वनि निद्रित, नीरव भू पर ॥

(३८)

कायरता है आत्मघात यह यद्यपि साहस की सन्तान।
इससे केवल मिट सकते हैं भूख, प्यास, भू के अपमान ॥
पञ्च-भूत में मिलने से कब आत्म-व्यथाएँ होती कम।
जिन्हें दूर कर सकते केवल सेवा, ध्यान और संयम ॥

(३९)

धीरे धीरे बह सकती जो अविरल अश्रु बहाने से।
दूर न होगी विषम व्यथा वह केवल तन मिट जाने से ॥
मिला मनुज का तन है तुमको यों खोने के लिये नहीं।
रोओ पर वह रोना हो केवल रोने के लिये नहीं ॥

(४०)

ठिठुक गई वह और चतुर्दिक् उसके लगे दौड़ने नैन।
इस जन शून्य प्रान्त में किसके हो सकते ये कोमल बैन ॥
क्या कोई कामी कुविचारी छिप कर पीछे से आया ?
अथवा भूत प्रेत आदिक की है यह भयकारी माया।

(४१)

या रवि-तनया के दयार्द्र उर से निकला है यह उपदेश।
अथवा इस वचनामृत द्वारा दे सान्त्वना रहे राकेश ॥
या उसकी ही अन्तर वीणा है बज उठी आप ही आप।
आये हैं या स्वयं विधाता हरने को उसका सन्ताप ॥

(४२)

विस्मय, क्रोध तथा भय के नीरव कम्पन तन में झलके।
लज्जा ग्लानि और आशा के आंखों में आंसू छलके ॥
विविध पक्षियों के कलरव से कूजित तरु सा उसका मन।
इष्ट अनिष्ट लगा दोनों का करने एक साथ चिन्तन ॥

(४३)

धूल धूसरित शीशे में शोभित नव-प्रतिमा सी सुन्दर।
पहुँच चुकी थी अब वह तट पर भीगी धोती के भीतर ॥
मलिन वस्त्र में तन की द्युति दीपित थी ज्यों जल में राकेश।
कमल नाल से कोमल करके कल्ले थे कमनीय विशेष ॥

(४४)

सर से विलग हुए सरसिज की भांति हँसी-हत एँड़ी पर।
श्रम की पीड़ा ने अपना अधिकार लिया था पूरा कर॥
अतः वहीं पर बैठ लगाया उस निर्जन बोली पर कान।
शंकर ध्यान निमग्ना गिरजा सी करती शंकर का ध्यान॥

(४५)

उसी समय स्वर्गिक सुमनों की त्रिभुवन में सुगन्ध भरते।
चन्द्र-ज्योत्स्ना में छवि-नौका सा धीरे धीरे तरते॥
रंग बिरंगी मणियों की माला सा उतरा भूतल में।
एक दिव्य नभयान डालता छाया निज यमुना जल में॥

(४६)

स्फुटित लताओं से निर्मित नभचर निकुञ्ज में इन्दु घुसा।
इन्द्र-चाप की चलनी से या चुआ रही सौंदर्य उषा॥
अथवा लाल हरे पीले हीरों का हरकर सुन्दर रंग।
नील गगन से उतर रही है नील सलिल पर नील तरंग॥

(४७)

विस्मृत पलक-पात नैनों से देख मनोहर यह भूला।
श्रद्धा, भक्ति, भाव से उस चिन्तित युवती का उर फूला॥
सुखद स्वप्न में जागृत-कष्टों को भूला सा उसका मन।
इस सौंदर्य-सुधा का करके पान हो गया हत-चेतन॥

(४८)

आकर बाला के सम्मुख वह ताप-हीन ज्वाला सा यान।
गति विहीन हो गया और बाहर निकले हँसते भगवान॥
एक हाथ थी मधुर मुरलिका और दूसरा था खाली।
बिहँस रही थी कलित करतलों पर सन्ध्या की नभ-लाली॥

(४९)

नील सलिल पर फेन-रेख सी थी उर में अङ्कित बनमाल।
मेघ-घटा सी वक्षस्थल की सुखमा थी गम्भीर विशाल॥
मृदुल हास्य में सञ्चित थी वसुधा के सुमनों की मुस्कान।
नैन-ज्योति पर रवि-शशि-तारे सब की किरणें थीं बलिदान॥

(५०)

मणि-मुक्ता-युत मुकुट के सहित शोभित था यों भाल विशाल।
हिम पर्वत के उज्ज्वल मस्तक पर ज्यों रवि-किरणों का जाल॥
था शोभित हो रहा श्याम सुन्दर शरीर में पीताम्बर।
ऊर्मित पीत-सिन्धु था मानों प्रतिबिम्बित नभ-मण्डल पर॥

(५१)

हाथ जोड़ कर बोली बाला—हे करुणासागर, कर्तार!
हे अनन्त, अविनाशी, अद्भुत, अगम, अगोचर, हे अविकार!
हे अन्तर्यामी नारायण! हे सब अधरों की मुस्कान!
सर्व-शक्ति के संचालक हे! हे सच्चिदानन्द भगवान!

(५२)

सब में व्याप्त पृथक सबसे हे ! हे बिराट, ब्रह्माण्ड, निकाम !
हे मुझ असहाया अबला के द्वापर वाले सुन्दर श्याम ॥
आँसू भी तो शेष नहीं हैं करूँ किस तरह पद पूजन ।
ज्ञात कहाँ था आज अचानक तुम दोगे मुझको दर्शन ॥

(५३)

और न आगे बोल सकी थी गई विनय-लतिका ही सूख ।
करने से उपवास निरन्तर शेष कहाँ रहती है भूख ॥
पर उसके प्रतिमा से अङ्कित निश्चल औ' नीरव तन में ।
जाग उठी वह जीवन की लिपि जो थी सुप्त पड़ी मन में ॥

(५४)

रोम-रोम कहते थे रोकर—हो तुम अति निष्ठुर भगवान !
क्या तुमने ही नहीं उजाड़ा जीवन का जीता उद्यान ॥
भला किस लिये इस पतिहीना के तन में मादक यौवन—
भर कर वह सौन्दर्य बनाया जिसमें करता बास मदन ॥

(५५)

दुर्व्यसनों का जिसके चारों तरफ हो रहा मेला हो ।
पलने में ही जिसको मिलने लगा मदन का ठेला हो ॥
गुड़ियों के विधवापन का भी जिसने कष्ट न झेला हो ।
नित्य नये गुड्डों से उनको शादी करकर खेला हो ॥

(५६)

जिसके लिये धर्म-उपदेशक जी ही स्वयं सदा तरसें ।
जिस पर उसी जाति के लोगों के नित नैन-बाण बरसें ॥
सुनती और देखती है जो स्वयं तुम्हारा रास सरस ।
कैसे उसका मन हो सकता है बतलाओ तुम्हीं निरस ॥

(५७)

किस सूरज के लिये पङ्क से निकले उसका पङ्कज मन ?
किस पवित्रता के चन्दन से चर्चित हो उसका यौवन ?
किस संयम के बन्धन से वह बाँधे अपना चित चञ्चल ?
किस सम्मान के लिये वह नैनों से रहे बहाती जल ?

(५८)

तिरस्कार का सागर तरती है इस दुखमय जीवन में ।
अपमानों के अश्रु गूंथती करुणा के निर्जन बन में ॥
इसके निर्जन जीवन पथ में अब उड़ती है बेहद धूल ।
सूखी आशा-लता है इसकी बिना खिले ही आह ! समूल ॥

(५९)

अब इसको अपने चरणों में नाथ कृपा कर दो आश्रय ।
ऊब चुका है सांसारिक झगड़ों से इसका अबल हृदय ॥
यम का वेष बना कर आओ दूर करो मुरली माला ।
उसी भयानक रूप का रही है कर आवाहन बाला ॥

(६०)

अपनी मधुर मुस्कुराहट के द्वारा सूचित करते खेद।
बोले विश्वम्भर—बाले, है छिपा न हमसे तेरा भेद॥
पवित्रता की प्रतिमा है तू सीमा है तू संयम की।
सहनशीलता की शिक्षक है शासक है जग के ग़म की॥

(६१)

निर्विकार है निर्चेष्टा है, हाँ! तेरा करुणा क्रन्दन।
नेत्र-हीन श्रवणों के सम्मुख था निशि-दिन करता नर्तन॥
जिस समाज की धर्म-ध्वजा है उसने तुझे न पहिचाना।
इसीलिये कालिन्दी में सोचा है तूने छिप जाना॥

(६२)

पर इससे कुछ लाभ न होगा मन का नहीं मिटेगा क्लेश।
और न पापों से छुटकारा पा सकता है पीड़ित देश॥
सदय समाज को न कर सकता तेरा यह अदृश्य बलिदान।
कैसे फिर तुझ सी दुखियाओं का कम होगा कष्ट महान॥

(६३)

इस भूतल पर विधवाओं का है सब से पवित्र जीवन।
जग की सेवा करने के हैं प्राप्त उन्हे सारे साधन॥
केवल सांसारिक सुख की चिन्ताएँ उन्हें रुलाती है।
इसीलिये वे भाग्य-विहीना सन्तत समझी जाती हैं॥

(६४)

जग के क्षणिक सुखों से—जिनके ओट क्लेश का है भाण्डार—
केवल वहीं खुशी होती है जहाँ अविद्या का विस्तार॥
शारीरिक सङ्कट में भी जो लखते हैं आत्मिक आनन्द।
वे ही हैं यथार्थ में सच्चे ज्ञानी, सुखी और स्वच्छन्द॥

(६५)

दो आत्माओं के आपस में मिलने को कहते हैं व्याह।
केवल शारीरिक सम्मिलन नहीं है इसकी उत्तम राह॥
पार्थिव तन के मिटने पर हो कभी नहीं सकता विच्छेद।
रोती हो इसलिये कि तुम पर प्रकट नहीं है इसका भेद॥

(६६)

क्षिति, नभ पावक, पवन तथा जल जिससे बना तुम्हारा तन।
उनमें हीं तुम कर सकती हो अपने पति का भी दर्शन॥
चाहे जिधर दृष्टि दौड़ाओ पाओगी उस प्रियतम को।
धीरे-धीरे उसमें ही पहिचान सकोगी फिर हमको॥

(६७)

जग में जितने प्राणी हैं सब साँस हवा में लेते हैं।
अनल, अनिल, नभ भी मिल सब को समुचित जीवन देते हैं॥
पृथ्वी पर सब विचर रहे हैं सब में है अदृश्य तव नाथ।
क्यों न प्रेम करती हो तुम दुनिया के सब जीवों के साथ॥

(६८)

माना इन मिट्टी के नैनों से न सुलभ पति का दर्शन।
पर अन्तर में कर सकती हो चाहो तो यथार्थ चिन्तन॥
यही सच्चिदानन्द के लिये है अति सीधी सच्ची राह।
विश्व प्रेम में पागल होना ही है सब से बढ़ कर चाह॥

(६९)

यह कहते-कहते विमान पर फिर आ बैठे श्री भगवान।
बारम्बार किया बाला ने जोड़ युगल कर उन्हें प्रणाम॥
इसी समय अस्ताचल पर लेगये चन्द्र निज शिथिल शरीर।
पूर्व दिशा के गालों में मल दिया उषा ने लाल अबीर॥

(७०)

तारों के अदृश्य हाथों ने खींच लिया ऊपर यह यान।
नभ-पथ में जो साथ उन्हीं के हुआ अचानक अन्तर्धान॥
अब चिड़ियों का कलरव मिल कर कालिंदी के कल-कल में।
रवि-किरणों को बुला रहा है शासन करने जल थल में॥

—:o:—

सेवा मार्ग

(१)

अस्ताचल पर रवि पहुँचे थे उदयाचल पर चन्द्र-प्रभा।
तारों की होने वाली थी नभ मण्डल में वृहत सभा॥
मुग्धा के गालों पर दौड़ी लाज-लहर सी छवि शाली।
छुती छितिज का आलिङ्गन कर थी सन्ध्या की नभ-लाली॥

(२)

था मधुमास मेघ सा छाया मादकता बरसाता था।
शिथिल शरीरों में भी चेतनता का रस सरसाता था॥
अलिगण के अलाप में मिल कर कामिनियों का कलित कलाप।
बनकर बावन का विस्तृत पग करता था त्रिभुवन की नाप॥

(३)

चहल पहल की बहल चतुर्दिक दौड़ रही थी मनमाना।
पिला रही थी ऋतु-नायक को प्रकृति प्रेम का पैमाना॥
गगन-स्पर्शी एक भवन में दीपावलि की चमचम में।
नव सरोज सी खिली सैकड़ों सुन्दरियों की छुम-छुम में॥

(४)

घिरा एक बालक बैठा था बाँधे सिर पर मौर अजान।
ले अगणित नैनों की चितवन अगणित अधरों की मुस्कान॥
पास उसी के खड़ी हुई थी उसी सु-आकृत की बाला।
और एक ही साँचे में दोनों को विधि ने था ढाला॥

(५)

कोई भी सौभाग्य चिह्न पर प्रकट न था उसके तन में।
घोर निराशा नाच रही थी उसकी भोली चितवन में॥
इस विवाह के उत्सव में भी उस युवती के मलिन दुकूल।
बतलाते थे धूल हो चुका है उसका सब सौख्य समूल॥

(६)

कनक-लता सी लहर रही थीं जहाँ अनेकों ललनायें।
अलङ्कार की आँधी सी थीं लिये जहाँ सब अबलायें॥
वहीं ग्रीष्म के निर्जन बन सा इस अजान का शून्य शरीर।
अवलोकनकर अपनी स्थिति था बार बार हो रहा अधीर॥

(७)

जिन सखियों में रहती थी वह राधारानी सी विकसित।
जिनका साज समाज न उसके बिना कभी होता शोभित॥
आज उन्हीं में दीना होकर रहे भला वह किस कारण।
निज भाई के भी विवाह में करे न क्यों भूषण धारण॥

(८)

है अनन्त धन-राशि गेह में जीवित सभी पिता माता।
जिसके सिर पर मौर धरा है, है वह उसका ही भ्राता॥
सब के अधरों पर सुहास है वही अकेली क्यों रोवे।
वह भी सब की भाँति न क्यों विचरे बोले पुलकित होवे॥

(९)

बोली हो अधीर माता से—मैं भी पहिनूँगी गहने।
सखियों को लख सजी न देता चित्त मुझे अब चुप रहने॥
वहीं पुरोहित जी बैठे थे सुन यह क्रोधित हुए बड़े।
तेज़ आँच पर चढ़े दूध की भाँति अचानक उबल पड़े—

(१०)

बड़ी लाड़िली है यह लड़की लज्जा इसे न आती है।
नहीं बैठ चुपचाप भाग्य पर एक जगह पछताती है॥
शुभ कर्मों में अशुभ मूर्ति यह पहिले ही दिखलाती है।
जाने किस भावी अनिष्ट के आँसू यहाँ गिराती है॥

(११)

सुनकर यह बूढ़ी अबलायें काँप उठीं भय के मारे।
और कहा—जा भाग्य विहीने! दूर यहाँ से हट जा रे!
तिरस्कार-युत नैनों से बोली माँ भी—अब सो जा तू।
यही एक भाई है तेरे, दूर यहाँ से हो जा तू॥

(१२)

क्रोध और अपमान से उठा हो उस बाला का मुँह लाल।
खींच ले गई अपने तन को दूर वहाँ से वह तत्काल॥
शयनागार में पहुँच निज भीतर से करके बन्द किवार।
तोड़ तोड़ कर लगी फेकने हृत्तन्त्री के टूटे तार॥

(१३)

पर उसका अपमानित मुख उस बालक में हो प्रतिबिम्बित।
अब भी उसकी व्यर्थ-व्यथा की ओर कर रहा था इङ्गित॥
पड़े लीलने भगिनी को जिसके हित तिरस्कार के कौर।
कोई सच्चा भाई कैसे धारण कर सकता वह मौर॥

(१४)

नोच नोच वह लगा फेकने चारों तरफ मौर की लर।
और कहा —अब मैं सकता हूँ नहीं किसी की कन्या बर॥
यदि इस जग में रहा न मैं उसका भी यही हाल होगा।
भगिनी ही की भांति नैन में उसके नीर-जाल होगा॥

(१५)

माता-पिता-पुरोहित संगी साथी सब करते अपमान।
क्या मेरी भगिनी का कोई अब इस जग में कहो रहा न॥
पति-हीना है इसी लिये क्या रहे रात दिन वह रोती।
अपने निर्मल तन पर केवल धार एक मैली धोती॥

(१६)

मैं उसका भाई हूँ उसके दुख में क्यों न दुखी होऊँ।
उसको रोते देख न क्यों मैं भी थोड़ा सा खुल रोऊँ॥
अब मुझको लेकर विवाहने जा सकती यह नहीं बरात।
सहोदरा के दुख दरिया में मुझको है बहना दिन रात॥

(१७)

यों ही कहते फेक मौर के सँग ही वैवाहिक बाना।
अन्धकार में लीन होगया बालक वह शोभा साना॥
ललनाओं का गीत हो गया परिणित सहसा रोदन में।
हुए पुरोहित जी भी शंकित बहुत-बहुत अपने मन में॥

(१८)

था अति हठी बीर बालक वह जो कहता था करता था।
ऐसे समयों पर न मृत्यु से भी वह किञ्चित डरता था॥
अतः किसी की पड़ी न हिम्मत बल पूर्वक बैठाने की।
युक्ति लगे सब लोग सोचने वापस उसे बुलाने की॥

(१९)

कुछ ने उसकी करी प्रशंसा कुछ ने उसे कहा पागल।
कुछ ने कहा—लाड़ से मां के है उसमें यह अनुचित बल॥
कुछ चुपचाप चले निज निज गृह उसको चले मनाने कुछ।
और पुरोहित जी के ऊपर लगे रोष दर्शाने कुछ॥

(२०)

इधर सजी बारात खड़ी है उधर हो गया दूल्हा लोप।
उस कुटुम्ब पर लोगों ने समझा विधि का यह भीषण कोप॥
बन्द हुआ बाजों का बजना इधर-उधर दौड़े सब जन।
घोर उदासी के शासन में अब था वह आनन्द-भवन॥

(२१)

इसी समय गृह के आँगन में उसका क्रुद्ध पिता आया।
पुत्री और पुत्र दोनों के ऊपर था अति झल्लाया॥
पूछा—"किधर गये वे दोनों ?" पर न किसी ने बतलाया।
ज़ोर-ज़ोर से ले-ले उनका नाम बहुत वह चिल्लाया॥

(२२)

सत्वर उसकी चिल्लाहट से गूँज उठा वह सारा घर।
पर प्रतिध्वनि के सिवा न उसको मिला कहीं से कुछ उत्तर॥
ठोकर खाकर गिरा अचानक आँगन में मृत सा लेटा।
बेहोशी में निकला मुँह से—कहाँ गया मेरा बेटा ?

(२३)

चारो तरफ भीड़ लोगों की जमा हुई उसके आकर।
सबके गालों पर मोती से अश्रु बिन्दु थे रहे बिखर॥
मानों उस गृह के मालिक से मिलते हों वे अन्तिम बार।
झांक रहे हों नैनों की खिड़की से उनके उर लाचार॥

(२४)

उदयाचल औ' बीच गगन के बीच हुए जब विधु चित्रित।
उनकी रम्य रश्मियों की थपकी खा हुई प्रकृति निद्रित॥
तो पृथ्वी पर लोटे उस पीड़ित तन ने खोले निज नैन।
और आह के साथ होंठ से भूल पड़े ये व्याकुल बैन॥

(२५)

"एक बार आओ तुम दोनों भाई बहन साथ ही साथ।
मेरे शून्य-समूह-माथ पर रक्खो अपने कोमल हाथ॥
उतर गया है ताप क्रोध का लगी मोह की है अब प्यास।
आओ मेरे बच्चो ! आओ, आओ पूर्ण करो अभिलाष॥"

(२६)

चूस चन्द्रमा की चुप किरणों ने तत्क्षण यह लिया कथन।
लगी निराशा सब के नैनों से देने उसको दर्शन॥
उसी समय उसके श्रवणों से टकराई यह करुण पुकार—
"सचमुच तेरे साथ हुए हैं भगिनी बहुत कड़े व्यवहार॥"

(२७)

शयनागार में सुता के आगे बढ़ देखा माता ने।
केवल उसका सुत बैठा है करुणा का बितान ताने॥
बोली—बेटा ! क्यों रोता है बेटी है सो रही कहां ?
उत्तर मिला—आह ! वह देवी स्मृति में केवल रही यहां॥

(२८)

बड़ी देर से खोज रहा हूँ पता नहीं उसका पाता।
पढ़ पढ़ उसका पत्र कलेजा है अब और फटा जाता॥
केवल यही पत्र होगा अब भगिनी के स्मृति का आधार।
चलते समय गई थी रख जो निज शैया पर अन्तिम बार॥

(२९)

सुन यह माता सन्न हो गई, बालक उसके साथ उदास।
भगिनी की वह चिट्ठी लेकर पहुँचा शीघ्र पिता के पास॥
अब वे स्वस्थ भाव से थे कुछ देख पुत्र को फूल गये।
तथा पूर्व की चिन्ताओं के साथ कष्ट सब भूल गये॥

(३०)

बोले—"वत्स! कहां है पुत्री?" सुत ने नैनों में जल भर—
दिया पिता के कर कमलों में तत्क्षण उस पत्री को धर॥
पाठक, आओ तुम भी सुन लो उस दुखिया की अन्तिम आह।
भारत के कोने कोने में यद्यपि है यह दीपित दाह॥

(३१)

पूज्य पिता हे! प्रेम मयी माता हे! हे प्यारे भ्राता!
टूट रहा तुमसे सदैव को है इस जीवन का नाता॥
अन्तिम आज प्रणाम तुम्हें है विनती है यह अन्तिम बार।
बिदा न लेती किन्तु करूँ क्या? हूँ अब मैं अतीव लाचार॥

(३२)

अगर न होती भाग्य-विहीना जैसा सब कहते हैं जन।
अशुभ-वायु-मण्डल ले चलता अगर न मेरा मलिन बदन॥
यदि मेरी छाया शुभ कर्मों को न राहु बन ग्रस लेती।
यदि स्वदेश-भू मुझ दुखिया को भी थोड़ा आदर देती॥

(३३)

यदि प्रिय भाई का विवाह भी इन नैनों से लख पाती।
पग-पग पर कुतिया सी यदि मैं, आह! न दुर-दुर की जाती॥
तो सौभाग्यवती मां की बेटी हो क्यों फिरती रोती?
और तुम्हारी सेवा से क्यों विलग सदा को यों होती?

(३४)

सुनती हूँ—है रहा न कोई साथी मेरा इस जग में।
सदा अकेले ही चलना है तमसावृत जीवन मग में॥
मेरे सिर पर है केवल अपने ही जीवन का लघु भार।
तो जब चाहूँ तज सकती हूँ यह दुख मय असार संसार॥

(३५)

मुझ को सुखी बनाने का है प्राप्त नहीं तुमको अधिकार।
और तुम्हारे सुख-दुख में मैं भाग न ले सकती लाचार॥
कोमल तन हूँ कोमल मन हूँ दुख का कभी न देखा द्वार।
फिर कैसे सह सकती थी मैं यह सामाजिक अत्याचार॥

(३६)

अब अवश्य ही तज दूँगी मैं यह अपमानित तुच्छ शरीर।
मिटा मुझे देगा क्षण भर में माता कालिन्दी का नीर॥
मेरी तनिक न चिन्ता करना भूल मुझे जाना मन से।
सुख न तुम्हें कुछ मिल सकता था मेरे दुखमय जीवन से॥

(३७)

सुन पत्थर की मूर्त्ति पुरोहित जी भी बोले हो पानी।
धिक है मुझको मुझसे ही है हुई विकट यह नादानी॥
उस प्रसून सी कोमल कन्या को कटु वाक्य कहा क्यों कर।
मानव के तन में हूँ क्या मैं कोई गुप्त बसा विषधर॥

(३८)

विधवाओं की विषम व्यथा है सम्मुख नाच रही साकार।
अब कट जायेगी यह रसना यदि कटु वाक्य किया उच्चार॥
जाता हूँ कालिन्दी तट पर उसका पता लगाऊँगा।
जैसे होगा उस देवी को बुला यहाँ फिर लाऊँगा॥

(३९)

कह चल पड़े पुरोहित जी यह बालक उनके साथ चला।
ममता की प्रतिमा माँ कैसे रह सकती थी भवन भला॥
भूल गया निज कष्ट पिता भी इस भीषण दुख के आगे।
मन ने बाँधे शिथिल गात पर साहस के सच्चे धागे॥

(४०)

और लोग भी चले साथ ही दृष्टि चतुर्दिक दौड़ायी।
पर न किसी ने उस युवती की परछाईं भी लख पायी॥
रजत-शिला सी केवल यमुना थी सोती निर्जन थल में।
मानों उसका भी न रहा है साथी कोई भूतल में॥

(४१)

निर्जन बन में भटके राही से ये लोग रहे फिरते।
आशा और निराशा दोनों के लखते बादल घिरते॥
तेजहीन हो चन्द्रदेव जब बैठे आ अस्ताचल पर।
तो उत्तर तट से ले आने पवन लगा कुछ करुण-स्वर॥

(४२)

अपनी प्रथम रश्मियों का रवि ने धर निज तनया पर कर।
दर्शित की सुपिता की ममता प्यारी पुत्री के ऊपर॥
पुलकित हो रवितनया ने भी तरल तरङ्गों के द्वारा।
सूचित झट कर दिया पिता के शुभ दर्शन का सुख सारा॥

(४३)

इसी समय वह करुण शब्द जिस उत्तर तट से था आया।
वहीं पिता पुत्री को लोगों ने सहसा मिलते पाया॥
घोर निराशा के नभ में आशा का रवि हो गया उदित।
नव प्रभात के अमल कमल सा सब का हृदय हुआ प्रमुदित।

(४४)

कहा पिता ने—प्यारी पुत्री ! लज्जित हैं निज कृति पर हम।
तेरी यह दुर्दशा देखकर क्लेश न कुछ होता है कम॥
करता हूँ वादा भविष्य में भूल न ऐसी होगी अब।
देवी सा सम्मान करेंगे मेरे घर में तेरा सब।

(४५)

बड़ा खेद है तेरा मैंने मूल्य न अब तक था जाना।
तेरे कष्टों को न स्वप्न में भी धिक किञ्चित अनुमाना॥
तुझसा नहीं तपस्वी कोई मिल सकता है त्रिभुवन में।
कूट-कूट कर भरी हुई है पवित्रता तेरे तन में॥

(४६)

शुभ कर्म्मों में सदा रहेगी बेटी तू सब से आगे।
नासमझी की निद्रा से हैं देख पुरोहित जी जागे॥
जो चाहेगी वही करूँगा चल उठ साथ हमारे चल।
आँसू से तर है लख तेरी प्रिय माता का भी अञ्चल॥

(४७)

मैली फटी और भीगी धोती सँभालती वह बाला।
बोली—सांसारिक-सुख-सुपनों पर पड़ चुका पूर्ण पाला॥
जो कल थी वह आज नहीं हूँ है यथार्थ अब अपना ज्ञान।
लगा गये कर्त्तव्य-मार्ग पर मुझे स्वयं ही श्री भगवान॥

(४८)

जब माता यमुना ने भी न दिया मुझ को आश्रय हे तात!
और बीतने पर जब आई रोदन करते सारी रात॥
तो उस परम पिता परमेश्वर ने कर दया दिया दर्शन।
और बताया किस प्रकार है उचित बिताना यह जीवन॥

(४९)

अब मेरे सिर से न कभी कम होगा जग सेवा का भार।
यही हमारी इच्छा होगी यही हमारा सुख श्रृंगार॥
तुम में भी लख यह परिवर्तन खुशी मुझे है अपरम्पार।
इससे मेरी अभिलाषा को है मिल गया उचित आधार॥

(५०)

उस बाला के इन बैनों का सब पर पूर्ण प्रभाव पड़ा।
सब के उर में विधवाओं की विषम व्यथा का तीर गड़ा॥
युवक जनों की उसके भाई ने की एक समिति तैयार।
जिसका काम सिर्फ था ढोना विधवाओं के दुख का भार॥

(५१)

तरुण-तपस्विनि! हे! करते हैं हम भी तुझे सभक्ति प्रणाम।
और लेखनी को भी देते हैं अब यहीं पूर्ण विश्राम॥
पाठक! तुम भी विधवा-बहिनों की रखना इज्जत का ध्यान।
उनके ही स्वरूप में विचरण करते इस युग में भगवान॥

:o: इति :o:

इसे मत पढ़िये !

किन्तु ध्यान रखिए कि सरल और शुद्ध हिन्दी में स्त्री-शिक्षा की सबसे अच्छी, सस्ती, तथा सचित्र मासिक पत्रिका एक मात्र

गृहलक्ष्मी

ही है। इसमें पातिव्रत आदि धर्म, उपदेश भरी कविताएँ, शिक्षा पूर्ण उपन्यास, नाटक, गृहप्रबन्ध, पाकशास्त्र, स्वास्थ्य-रक्षा, शिशु-पालन, सीना-पिरोना, तस्वीर खींचना, संगीत कला, देश विदेश की बातें, वैज्ञानिक चुटकुले, मनोरञ्जक पहेलियां आदि स्त्रियों के सभी उपयोगी विषय रहा करते हैं। आज ही पत्र लिखिये। वार्षिक मूल्य लागत के अनुसार केवल ३) रक्खा है, ।=) का टिकट भेज कर कम से कम नमूना तो मँगा देखिये।

पता—

श्रीमती गोपालदेवी,

'गृहलक्ष्मी'—कार्यालय, इलाहाबाद।